International Journal of Applied Research 2017; 3(5): 611-615

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(5): 611-615
www.allresearchjournal.com
Received: 25-03-2017
Accepted: 26-04-2017

डॉ. मनीषा शुक्ला
अतिथि विद्वान, हिन्दी विभाग, शासकीय संजय गांधी स्मृति स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सीधी (म.प्र.), भारत।

Correspondence
डॉ. मनीषा शुक्ला
अतिथि विद्वान, हिन्दी विभाग, शासकीय संजय गांधी स्मृति स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सीधी (म.प्र.), भारत।

महादेवी के काव्य में रहस्यवाद

डॉ. मनीषा शुक्ला

सारांश
समग्रतः छायावादी साहित्य में रहस्यवाद का जो स्वरूप विद्यमान है, वह आर्य संस्कृति की उपज है। छायावादी कवियों के रहस्यवाद पर विभिन्न विचारधाराओं का प्रभाव दिखायी देता है। उन्होंने वैदिक साहित्य से अद्वैत की छाया ग्रहण की और लौकिक प्रेम का समन्वय करके उसे बोधगम्य बना दिया। उनकी रहस्यवादी भावना गूढ़ न होकर सरल तथा मुक्तिदात्री है। उन्होंने प्रतीयमान जगत् की अवास्तविकता का बोध कराकर मानव जीवन को ईश्वरोन्मुख तथा चरित्र प्रधान बनाया।
वस्तुतः छायावाद के सम्बन्ध में जो विभिन्न धारणायें आरम्भ से प्रचलित हुई वे अत्यन्त उतावली में बना ली गयी थीं। इसी कारण कहीं से एकांगी हैं और कहीं पर अत्युक्तिपूर्ण। सच तो यह है कि छायावादी कविताओं में एक साथ तीन–तीन क्रान्तियां हुईं, जिससे यह काव्यधारा पहले बनकर आयी। पहली क्रान्ति विचार और भावना के क्षेत्र में हुई, दूसरी कला के क्षेत्र में और तीसरी साहित्य परम्परा में। यह परिवर्तन इतनी तेजी से हुआ कि लोग उसे समझ नहीं पाये। अन्धों के देश में आँधी के जैसे विविध परिभाषाएँ होती हैं। उसी प्रकार प्रारम्भ में हिन्दी आलोचना क्षेत्र में छायावादी कविता का स्वागत हुआ। आज बहुत समय बीत जाने पर लोगों के सम्यक रूप से छायावादी कविता और उसके महत्व को समझा तथा स्वीकार किया है।

मूल शब्द: महादेवी, काव्य एवं रहस्यवाद

प्रस्तावना
छायावादी कवियों की वृहच्चतुष्टयी में एक महादेवी वर्मा हैं, इनका जन्म 1907 ई. फर्रूखाबाद (उत्तर प्रदेश) में एक सुसम्पन्न परिवार में हुआ था, इनके पिता का नाम गोविन्दप्रसाद वर्मा और माता का नाम हेमरानी देवी था। उनके पितामह बाबू बॉकेबिहारी दुर्गा के उपासक थे। अपने प्रगाढ़ आस्थाभाव के कारण उन्होंने पौत्री का नाम महादेवी रखा। महादेवी अपने माता–पिता की पहली सन्तान है। उनकी माँ आस्तिक स्वभाव के कारण घर का कार्य भार स्वयं सम्भालती थीं। बालिका महादेवी रो–रोकर कोलाहल मचा देती थीं। विवश होकर माँ ने परम्परा सेवित अफीम का सहारा लिया। वे अपनी दिनचर्या में व्यस्त होतीं और बालिका कल्पना लोक की सैर में। संभवतः यह अफीम सेवन का ही परिणाम था कि अन्य शिशुओं की अपेक्षा उनका विकास शीघ्र हुआ। तीन वर्ष की अल्पायु में ही उन्हें वर्णमाला का पूरा ज्ञान हो गया। पाँच वर्ष की अवस्था में इन्दौर–भोपाल की यात्रा में उनको 'अतीत के चलचित्र' का रामा मिला। इन्दौर के निवस काल में माँ ने बेटी को गृहकार्य, खिलौनों या विद्यालय में उलझाना चाहा, किन्तु फूल, तितली और हरी दूब से खेलने या कोयले अथवा सिन्दूर से दीवार रंगने की चाह रखने वाली बालिका भला कहीं और कैसे उलझ सकती थी। छोटे भाई–बहनों को पढ़ते देखकर, उलाहना मिलने पर विवश होकर वे पढ़ने लगीं। [1]
सामान्य रूप से अज्ञात सत्ता के प्रति मिलन की उत्कण्ठा, जिज्ञासा की भावना, तादात्म्य की अनुभूति का वर्णन ही रहस्यवाद माना जाता है। शुक्ल जी की अवधारणा है कि "दर्शनशास्त्र में जो अद्वैतवाद है, वही भावना या साहित्य के क्षेत्र में रहस्यवाद है।" कुछ आलोचकों का विचार है कि छायावाद का जो आन्दोलन आया, उसमें दो प्रकार के कवि हमारे सामने आये – एक वे जो मानव और प्रकृति के प्रेमपरक भावों के गायक थे और दूसरे वे जो आत्मा और परमात्मा के विरह–सम्बन्धों का चित्रण करते थे। [2]
हिन्दी साहित्य में ''रहस्यवाद'' शब्द का प्रयोग 1920 ई. से पहले नहीं दिखायी पड़ता है। [3] मुकुटधर पाण्डेय, सुमित्रानन्दन पन्त, जय शंकर प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा की नवीन रचनाओं के प्रकाश में आने के साथ ही ''रहस्यवाद'' शब्द का प्रयोग तेजी से चल पड़ा। यह ''रहस्यवाद'' शब्द अंग्रेजी के ''मिस्टिसिज्म'' का भावानुवाद है। प्रसाद जी का विचार है कि छायावादी साहित्य में जिस रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी अभिव्यंजना हो रही है, वह उसका स्वाभाविक विकास है। [4]
छायावाद के प्रबल समर्थक पं. शान्तिप्रिय द्विवेदी छायावाद की चरम परिणति रहस्यवाद में स्वीकार करते हैं। [5]

आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी का विचार है कि रहस्यवादी भावना छायावादी काव्य की एक प्रमुख विशेषता है, किन्तु उसकी मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय तथा सांस्कृतिक है। [6] दिनकर जी ने छायावादी कवियों की रहस्यवादी भावना को ''बौद्धिक जिज्ञासाओं का परिणाम'' कहा है। उन्हीं के शब्दों में– ''यदि विश्व की समस्त रहस्यात्मक अनुभूति को सामने रखकर सोयें तो कहना पड़ेगा कि छायावादी कवियों ने रहस्यवादी अनुभूतियों की लड़ी में एक भी नयी कड़ी नहीं जोड़ी।'' [7] महादेवी वर्मा ने भी रहस्यवाद को प्राचीन काल से चली आ रही आध्यात्मिक साधना से पृथक रूप में स्वीकार किया है। उनका कथन है कि रहस्यवाद नाम से अर्थ में छायावाद के समान नवीन न होने पर भी प्रयोग के अर्थ में विशेष प्राचीन नहीं है। [8] प्राचीन काल में इसका अंकुर अवश्य विद्यमान है, किन्तु उसमें रागात्मकता का सर्वथा अभाव है। डॉ. नगेन्द्र की मान्यता है कि ''छायावाद की रहस्योक्तियाँ एक प्रकार से जिज्ञासाएँ हैं, जो छायावाद के उत्तरार्द्ध में आध्यात्मिक दर्शन के द्वारा और भी पुष्ट हो गयी है। परन्तु वे धार्मिक साधना पर आश्रित नहीं हैं। उनका आधार कहीं भावना, कहीं दर्शन–चित्रण और आरम्भ में कहीं–कहीं मन की छलना भी है।'' [9]

रहस्यवाद एवं उत्तर मीमांसा

जब प्रकृति की अनेकरूपता परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने एक ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया, जिसका एक छोर किसी असीम चेतन में और दूसरा उसके असीम हृदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक–एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा परन्तु इस सम्बन्ध में मानव–हृदय की सारी प्यास न बुझ सकी क्योंकि मानवीय सम्बन्धों में जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होता। इसी से यह अनेक रूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना, जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया।

डॉ. गुलाबराय ने रहस्यवाद और उत्तर मीमांसा के परिप्रेक्ष्य में यह स्पष्ट किया है कि प्रकृति में मानवी भावों का आरोप कर जड़चेतन के एकीकरण की प्रवृत्ति छायावाद की एक विशेषता है और उसमें मूर्त की अमूर्त से तुलना करने वाले अलंकार विधान में, जैसे 'बिखरी अलकें ज्यों तर्कजाल' लहरों के लिए 'इच्छाओं सी असमान' तथा मानवीकरण प्रधान लाक्षणिक प्रयोगों में परिलक्षित होती है। जब यह प्रवृत्ति कुछ अधिक वास्तविकता धारण कर अनुभूतिमय निजी सम्बन्ध की ओर अग्रसर होती है तभी छायावाद रहस्यवाद में परिणत हो जाता है। [10]

डॉ. नामवर सिंह का कहना है कि – छायावाद के गर्भ से सन् 30 के आसपास नवीन सामाजिक चेतना से युक्त जिस साहित्य–धारा का जन्म हुआ, उसे सन् 36 में प्रगतिशील साहित्यवाद अथवा प्रगतिवादी साहित्य अथवा प्रगतिवाद की संज्ञा दी गई। तब से इस नाम के औचित्य–अनौचित को लेकर काफी विवाद होने के बावजूद छायावाद के बाद की प्रधान साहित्य–धारा को प्रगतिवाद के नाम से पुकारा जाता है। कुछ लोग प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य में भेद करते हैं। उनके अनुसार मानवीय सौन्दर्यशास्त्र का नाम प्रगतिवाद है और आदिकाल से लेकर जब तक की समस्त साहित्य–परम्परा प्रगतिशील साहित्य है। इस तरह वे केवल छायावाद के बाद ही साहित्यिक प्रवृत्ति के लिए 'प्रगतिशील साहित्य' नाम का प्रयोग अनुचित मानते हैं। दूसरी ओर ऐसे भी लोग हैं। जो मार्क्सवादी साहित्य–सिद्धान्त तथा इस सिद्धान्त के अनुसार रचे साहित्य को प्रगतिवाद कहना चाहते हैं और छायावाद के बाद की व्यापक चेतना वाले साहित्य को प्रगतिशील साहित्य कहते हैं, जिनमें विभिन्न राजनीतिक मतों के बावजूद एक सामान्य मानवतावादी भावना व्याप्त है। इस तरह के प्रगतिवाद को संकीर्ण और साम्प्रदायिक बतलाते हैं तथा 'प्रगतिशील साहित्य' को व्यापक और उदार। उनके अनुसार 'प्रगतिशील लेखक संघ' द्वारा निर्धारित और प्रचलित साहित्य प्रगतिवाद है और शेष प्रगतिशील साहित्य।

लेकिन जिस तरह छायावाद और छायावादी कविता भिन्न नहीं है, उसी तरह प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य भी भिन्न नहीं है। 'वाद' की अपेक्षा 'शील' को अधिक अच्छा और उदार समझकर इन दोनों में भेद करना कोरा बुद्धि विलास है और कुछ लोगों की इस मान्यता के पीछे प्रगतिशील साहित्य का प्रच्छन्न विरोधी भाव छिपा है।

जिस तरह छायावादी कवियों में एक को अधिक छायावादी तथा दूसरे को कम छायावादी अथवा एक को शुद्ध छायावादी तथा औरों को मिश्रित करने का जोर–शोर रहा है, उसी तरह प्रगतिवाद में भी किसी को शुद्ध प्रगतिवाद अथवा अधिक प्रगतिशील और दूसरों को कम प्रगतिशील कहने की हवा है। लेकिन इस वाद–विवाद के कारण यदि छायावाद में भेद नहीं किया गया तो प्रगतिवाद में भी भेद करने की जरूरत नहीं है।

'प्रगतिशील साहित्य' अंग्रेजी 'प्रोग्रेसिव लिटरेचर' का हिन्दी अनुवाद है। अंग्रेजी–साहित्य में इस शब्द का प्रचार 1935 ई. के आसपास विशेष रूप से ही रहा था। ई.एम. फार्स्टर के सभापतित्व में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन' अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का प्रथम अधिवेशन हुआ। हिन्दुस्तान में उसके दूसरे साल मुल्कराज आनन्द और सज्जाद जहीर के उद्योगवश उस संस्था की शाखा खुली और प्रेमचन्द की अध्यक्षता में लखनऊ में उनका प्रथम अधिवेशन हुआ तो यहाँ भी 'प्रोग्रेसिव लिटरेचर' अथवा 'प्रगतिशील साहित्य' का प्रचार हो गया। इस क्रम से अथवा प्रकारान्तर से यही प्रगतिवाद हो गया।

यहां हिन्दुस्तान में सन् 1936 के आसपास एकदम यूरोप का सा गतिरोध तो नहीं था लेकिन कविता में छायावाद का विकास लगभग रुक सा गया था और कवि कुछनये विचारों और माध्यमों की खोज में थे। ऐसे समय विदेश से लौटे हुए हिन्दुस्तानी लेखकों ने 'प्रगति' की आवाज लगाई और यह आवाज छायावादी कवियों को अपने अन्तर की प्रतिध्वनि प्रतीत हुई। फलतः सुमित्रानन्दन पंत ने छायावाद का युगान्त घोषित करके प्रगति करके प्रगतिवाद को 'युगवाणी के रूप में तुरन्त अपना लिया। देर सबेर निराला और महादेवी ने भी अपनी–अपनी सीमाओं में इसे स्वीकार किया लेकिन पंतजी की तरह निराला ने इस विषय में जल्दबाजी इसलिए दिखलाई कि वे पहले से ही कविता की 'बहुजीवन को छवि' मानकर सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करते आ रहे थे और इसलिये भी पंतजी की अपेक्षा उनमें वैयक्तिकता तथा अहंवाद अधिक था। इसी तरह महादेवी के मानसिक परिवर्तन में देर इसलिये हुई कि उनमें तब तक छायावादी भावुकता और कल्पना से विरक्ति पैदा नहीं हुई थी क्योंकि छायावाद में देर से आने के कारण अभी उनका भावावेश चरम सीमा पर पहुँच रहा था।

(ग) रहस्यवाद की परिभाषा

कुछ लोग छायावाद को पलायनवादी कहकर आलोचना करते हैं। ले चल वहाँ भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे–धीरे। [11] जैसी पंक्तियाँ उन्हें पलायन का संदेश देती है। किन्तु ध्यान रखना चाहिए की छायावादी सांस्कृतिक चेतना आध्यात्मोन्मुख होकर भी लौकिक धरातल पर प्रतिष्ठित है। इस पर भी उसे पलायनवादी कहा जाय तो यह आलोचक का पूर्वाग्रह माना जायेगा, क्योंकि तप नहीं केवल जीवन सत्य" [12] का उद्घोष करने वाली तथा जीवन का दाँव भरकर भी जीतने वाली की प्रेरणा देने वाली कविता पलायनवादी कैसे हो सकती है? यह पलायन स्वर्णिम अतीत अथवा कल्पनामय भविष्य में ही हो सकता है।

डॉ. रामविलास वर्मा ने भी लिखा है – "छायावाद को प्रतिक्रियावादी, पलायनवादी कहकर लांक्षित करना अन्याय है।

उसमें पराजय और पलायन की भावनाएँ भी हैं तो विद्रोह और मानवमात्र के प्रति सहानुभूति के स्वर भी। [13] महादेवी वर्मा मानती हैं कि छायावादी कवि नवीन जीवन दर्शन का जिज्ञासु रहा है। इसी कारण वह कभी अपने को इतना भूल जाता है कि लोकोत्तर सुखस्वप्न का अनुभव करने लगता है। अतः उसे पलायनवादी कहना उचित नहीं है। 'दीपशिखा' की चिन्तन के कुछ क्षण नामक भूमिका में महादेवी जी ने खेद के साथ स्वीकार किया है कि छायावाद एक प्रकार से अज्ञात कुलशील बालक रहा है, जिसे सामाजिकता का आधार ही नहीं मिल सका।" [14] अर्थात् आरम्भ में समीक्षकों ने उसके प्रति न्याय नहीं किया।

छायावाद के उपलब्धि के बारे में जो सन्देह व्यक्त करते हैं उनका भी कथन भ्रमपूर्ण है। इलाचन्द्र जोशी ने आरम्भ में छायावाद पर जो ऐसा आरोप लगाया बाद में उसका दृष्टिकोण बदल गया।" [15] हिन्दी साहित्य में छायावाद की उपलब्धि की समता भक्तिकाल के अतिरिक्त कोई भी काव्य धारा नहीं कर सकती। [16] छायावाद अपने युग की माँग थी और वह उस युग की माँग को पूरा कर आज इतिहास का वस्तु बन गया है। आज की परिस्थितियों में हम उसके अस्पष्ट जीवन दर्शन और अतिशय अलंकृत रूप की आलोचना भले ही कर लें। परन्तु इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि छायावाद ने हिन्दी साहित्य को जो समृद्धि प्रदान की थी, जैसी अमूल्य अमर रचनाएँ दी थीं उसकी पुनरावृत्ति आज तक नहीं हो पायी है। [17]

छायावाद रहस्यवाद के साथ कुछ विद्वान स्वच्छन्दतावाद का भी सम्बन्ध जोड़ते हैं किन्तु गंभीरतापूर्वक अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों काव्यधाराओं में कतिपय समानता होते हुये भी बुनियादी अन्तर है। प्रत्येक छायावादी काव्य स्वच्छन्दतावादी हो सकता है किन्तु प्रत्येक स्वच्छन्दतावादी काव्य छायावादी नहीं हो सकता। पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी काव्य के पहले नैतिकता की प्रधानता थी। अंग्रेजी कवियों में नैतिकता का बंधन तोड़कर "कला के लिए सिद्धान्त की स्थापना की किन्तु छायावाद के पूर्व द्विवेदी युग था, जो नैतिकता का घोर समर्थक है। छायावादी कवियों ने नैतिकता की सीमा लाँघकर छायावाद के प्रांगण में प्रवेश किया। वस्तुतः छायावादी काव्य स्वच्छन्दतावादी कम और पुनरूत्थानवादी अधिक था। छायावाद की प्राणानुभूति पर रीतिकालीन श्रृंगार चित्रण का काफी प्रभाव है। काव्य शास्त्रीय मूल्यों की दृष्टि से भी छायावाद प्राचीन सिद्धान्तों विशेषकर रस सिद्धान्त के अनुरूप हैं। [18]

(घ) रहस्यवाद के बोधक लक्षण

(1) आस्था

महादेवी ने रहस्यानुभूति के प्रभाव से धरती, आकाश, तारों तथा ग्रह–नक्षत्रों को भी अव्यक्त प्रियतम के प्रेम सम्बन्ध में बँधा देखा है। इसीलिए आकाश में तारों का जलना, सागर के हृदय में बड़वाग्नि तथा वसुधा के अन्तर में तोपों की हचलत की विद्यमानता कवयित्री की रहस्यवादी चेतना का प्रसार है। आधुनिक खगोल विज्ञान तथा नित्य प्रति के अनुसन्धानों ने ग्रह, नक्षत्र, धरती तथा वायुमण्डल के विभिन्न आवरणों का पर्दा हटा दिया है किन्तु इसके आगे 'क्यों' अथवा 'कौन' की जिज्ञासा अब भी 'रहस्य' का प्रश्न बनकर विद्यमान है। भौतिक परिवर्तन होता है, अणु और परमाणु में आकर्षण और विकर्षण की भौतिक क्रिया चलती रहती है। उल्कापात तारों के आकर्षण के कारण होता है, भूचाल धरा के अंतर्मन की पर्तों की करवट से आते हैं। किन्तु ऐसा कभी–कभी ही क्यों होता है? इन प्रश्नों का उत्तर कवि 'रहस्य' में खोजता है।

रहस्य की इस चेतना ने पलायनवाद को जन्म दिया। छायावादी कविता के नव जागरण तथा राष्ट्रीयता की भावना के विपरीत रहस्यवाद 'विश्व का अभिशाप क्यों चिर नींद बनकर पास आया' का फल देने लगा। इसीलिए प्रगतिवादी कविता में रहस्यवादी काव्य चेतना लुप्त होती देखी जाती है। इन सारी विसंगतियों के बावजूद भी महादेवी की रहस्यानुभूति आज के दुःखमय जीवन की व्यथा कथा के समानान्तर व्यक्तिगत जीवन में विरह दशा की तरह चलती रहती है।

आस्था एकाएक निर्मित या आरोपित तत्व नहीं है अपितु उसका विकास अतीत के संस्कारों एवं वर्तमान के अनुभवों के मेल से होता है। उसमें परम्परा और युगबोध तथा समष्टि और व्यष्टि का समन्वय होता है। इसे स्पष्ट करते हुए महादेवी ने लिखा है – "आस्था के सम्बन्ध में भी यही सत्य है – उसका मूल संस्कारजन्य है, पर प्रसार और व्याप्ति व्यक्तिगत अनुभवों की उपलब्धि है। आस्था व्यक्तिगत होने पर भी सीमित नहीं हो सकेगी। वस्तुतः आस्था मानव के युगान्तर से प्राप्त दार्शनिक लक्ष्य पर केन्द्रित रागात्मक दृष्टि है। आस्था जिसका एक अर्थ स्वीकारोक्ति भी है, वस्तुतः व्यक्ति के द्वारा समष्टि भी स्वीकृति है। इस स्वीकृति के लिए मनुष्य को अपने से बाहर स्थित जीवन से परिचित होना पड़ता है, अनेक परोक्ष और प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर एक जीवन–दर्शन बनता और उसमें रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है।" [19]

(2) अद्वैत भावना

महादेवी का पहले बौद्ध दर्शन से, बाद में अद्वैत दर्शन से परिचय हुआ। बौद्ध दर्शन के पर्यालोचन का अन्तर कहा जा सकता है कि बौद्ध मत वस्तुतः एक सर्वथा बौद्धिक मत है जो कि वैज्ञानिक किसी तटस्थता एवं प्रामाणिकता से युक्त है। इसकी स्थापना निश्चित ही पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर रूढ़ियों से ऊपर उठकर की गई है। सत्यानुसंधान के प्रति गौतम का दृष्टिकोण इतना अधिक निवैयक्तिक, विषय–परक, तटस्थ एवं तर्क–पूर्ण है कि उन्हें यदि दार्शनिक से अधिक वैज्ञानिक कह दिया जाय तो अत्युक्ति न होगी। भले ही वे वैज्ञानिक युग में उत्पन्न न हुए हों, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने अपनी अद्‌भुत प्रतिभा, तटस्थ बुद्धि एवं सूक्ष्म चिन्तन के बल पर परम्परागत दर्शन, धर्म, नीतिशास्त्र एवं मनोविज्ञान की धारणाओं को संशोधित एवं परिवर्तित करके उन्हें एक शुद्ध वैज्ञानिक रूप प्रदान करने का सफल प्रयास किया।

महादेवी के व्यक्तित्व, जीवन दर्शन एवं काव्य पर बौद्ध दर्शन एवं अद्वैत दर्शन – दोनों का गहरा प्रभाव है, इस तथ्य की पुष्टि स्वयं कवयित्री की स्वीकृति में एवं उनकी काव्य–रचनाओं से भली–भांति होती है। बौद्ध मत का प्रभाव उनकी दुःख सम्बन्धी धारणाओं एवं अनुभूतियों पर तथा अद्वैत मत का प्रभाव उनकी रहस्यानुभूति पर विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। अतः इस दार्शनिक पृष्ठभूमि का सम्यक् उपयोग महादेवी जी के साहित्य में पग–पग मिलता है – "कवि में दार्शनिक को खोजना बहुत साधारण हो गया है, जहाँ तक सत्य के मूल रूप का सम्बन्ध है, वे दोनों एक–दूसरे के अधिक निकट है, अवश्य पर साधन और प्रयोग की दृष्टि से उनका एक होना सहज नहीं। कवि का वेदान्त ज्ञान जब अनुभूतियों के रूप, कल्पना से रंग और भाव–जगत् से सौन्दर्य पाकर साकार होता है तब उसके सत्य में जीवन का स्पन्दन रहेगा, बुद्धि की तर्क श्रृंखला नहीं। ऐसी स्थिति में उसका पूर्ण परिचय अद्वैत दे सकेगा और न विशिष्टाद्वैत।" [20]

(3) विरहानुभूति

महादेवी के गीतों में विद्यमान वेदना की अनुभूति पूर्ववर्ती कविता की विरहानुभूति से भिन्न अथवा मधुर, कोमल तथा हृदय को द्रवित करने वाली है। इनकी वेदना को रेखांकित करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं कि – "उस अज्ञात प्रियतम के लिए वेदना ही उनके हृदय का भाव केन्द्र है जिसमें अनेक प्रकार की भावनायें छूट–छूट कर झलक मारती रहती हैं। वेदना से इन्होंने अपना स्वाभाविक प्रेम व्यक्त किया है। उसी के साथ वे रहना चाहती हैं।" [21] महादेवी के काव्य का मूल भाव रहस्यवाद

मानने के कारण आचार्य शुक्ल इनकी वेदना को सांसारिक दुःख से पृथक कहते हैं।

महादेवी की वेदना और करुण भावना को मात्र आध्यात्मिक रहस्यवाद की दृष्टि से ग्रहण करने पर उसका मानवीय पक्ष संकुचित हो जाता है, जबकि उन्होंने स्वयं लिखा है कि – "इस व्यक्ति प्रधान युग में व्यक्तिगत सुख दुःख अपनी अभिव्यक्ति के लिए आकुल थे। अतः छायावाद युग का काव्य स्वानुभूति प्रधान होने के कारण वैयक्तिक उल्लास, विषाद की अभिव्यक्ति का सफल माध्यम बन सका। समष्टिगत जीवन की बाह्य विकृति और आंतरिक विषमता की अनुभूति से उत्पन्न करुण भाव जो रूप पा सकता था, वह भी गायक से भिन्न कोई स्थिति नहीं रखता था। वर्णनात्मक काव्यों में जो प्रवृत्ति कवि की सूक्ष्म दृष्टि और उसके हृदय की संवेदनशीलता को व्यक्त करती वह स्वानुभूतिमयी रचनाओं में उसका व्यक्तिगत विषाद बनकर उपस्थित हो सकी।" [22]

(ङ) महादेवी वर्मा के काव्य में रहस्यवादी चित्रण एवं अवस्थाएँ

(1) जिज्ञासा

प्राचीन काल में आर्यों ने सम्पूर्ण सृष्टि में क्रियाशील प्राकृतिक शक्तियों को देवरूप में ग्रहण किया था। उन्होंने व्यक्त जगत के बीच अनेक रूपों और क्रियाओं में अभिव्यक्त प्राकृतिक शक्तियों की कल्पना एक समष्टि शक्ति के रूप में की थी। अतः स्वाभाविक रूप से उस परम शक्ति को जानने की इच्छा जागृत होती है।

(2) प्रेम भावना

प्रेम भावना मानव की शाश्वत प्रवृत्ति है। यह अनादि काल से चली आ रही है और चलती रहेगी। छायावादी काव्य में भी प्रेमभावना का रूप दिखायी देता है। किन्तु उसमें न तो रीतियुगीन प्रणय–भावना की स्थापना है, और न द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता। द्विवेदी युग में श्रृंगार रस के विरोध में जो जिहाद चला, उसने बाह्य और आन्तरिक प्रेम के बहुत से अंशों को अस्पृश्य बना दिया। श्री शोभा का नाम लेना ही अपराध हो गया था। [23] फलतः साहित्य में शक्तिहीन करुण भावुकता के राग अलापे जाने लगे। द्विवेदी–युग के कवियों ने कविता के साथ न्याय नहीं किया। उनकी अतित्रय अकमवृत्तात्मक कविता सीधे हृदय से उद्भूत न होकर बुद्धि की वीथियों में चक्कर काटती हुई आगे बढ़ती थी। [24] परिणामतः कविता श्रृंगार के अभाव में नीरस हो गयी और उसका हृदय पक्ष दब गया।

प्रेमभावना मानव हृदय की स्वाभाविक भूख है। यह सर्वथा लौकिक और श्रृंगारिक है। इसमें रति की प्रमुखता होती है। मनुष्य की वंश परम्परा इसी रति–भाव के कारण अक्षुण्य बनी रहती है तथा क्षणिक तृप्ति भी हो जाती है। [25] आदिकाल में स्त्री–पुरुष के यौन–सम्बन्ध आज से काफी भिन्न थे। सभ्यता के विकास के साथ ही प्रेम के आदर्शवादी रूप की प्रतिष्ठा हुई और विवाह–प्रथा के द्वारा पति–पत्नी में प्रणय–सम्बन्ध स्थापित हुआ। कोरा कायिक प्रेम तो बर्बर युग की वस्तु है। उसका मानसिक और सांस्कृतिक प्रतिकार प्रत्येक युग में अपने–अपने अनुसार हुआ है। [26] साहित्य में सभी समयों में इसका उल्लेख हुआ है। यह दूसरी बात है कि किसी युग में इसकी धूम मची हो, और किसी युग में निषेध किया गया हो।

(3) विरह वेदना

वेदना भारत के लिए कोई नवीन दर्शन नहीं है। वैदिक युग के बाद से यहाँ दुःखवाद का प्रचार–प्रसार दिखायी देता है। औपनिषदिक ऋषि ने लक्षित किया है कि संसार घृणा के योग्य है, क्योंकि इसमें क्षणमात्र के लिए सुख नहीं है। यह दुःखों से आवृत है जिसमें जीव घंटीयंत्र की भांति ऊपर–नीचे अहर्निश घूमता रहता है। [27] बौद्ध दर्शन के अनुसार दुःख ही आर्य सत्य है। जन्म में दुःख है, जरा में दुःख है, व्याधि में दुःख है, मरण में दुःख है, अप्रिय वस्तु के संयोग तथा प्रिय वस्तु के वियोग में भी दुःख है। [28] महाभारतकार के अनुसार इस संसार में सुख की अपेक्षा दुःख का आधिक्य है। [29] गीता में भी मानव जीवन को अशाश्वत और दुःखों का आलय [30] तथा अनित्य सुख–रहित कहा गया है। [31] अन्तिम दुःखद परिभाषा के कारण अन्त में सुख के निष्ट हो जाने के विचार से विवेकियों को प्रत्येक वस्तु दुःखदायी ज्ञात होती है। [32] जीवन की इस दुःखस्वरूपता के कारण उसका सर्वत्र प्रखार दिखायी देता है।[33]

साहित्य में यही दुःखवाद "वेदनानुभूति" की संज्ञा से अभिहित हुआ है। जीवन और जगत् पर इसकी छाया प्रारम्भ से चली आ रही है और आज भी किसी–न–किसी रूप में दृष्टिगोचर होती है। अतः वेदनानुभूति की व्यापकता भारतीय जीवन–दर्शन का प्रमुख आधार है।

छायावाद–युग में सर्वत्र वेदनानुभूति की तीव्रता विद्यमान है। इस वेदना का मानव जीवन में इतना महत्व है जितना कि आनन्द का। [34] मनुष्य अपने सभी कार्य सुख प्राप्ति के लिए करता है, किन्तु दुःख उसका पीछा नहीं छोड़ता है। इसलिए उसे जीवन में वेदना और निराशा का सामना करना पड़ता है। छायावादी काव्यधारा की यह वेदनानुभूति कवियों की वैयक्तिकता और संवेदनशीलता का परिणाम है। इसके साथ ही उस काल की कुण्ठा, क्षोभ, अभाव तथा सामाजिक विषमता का भी पूर्ण रूप से प्रभाव लक्षित होता है। [35]

(4) आत्मसमर्पण

आत्मसमर्पण की दृष्टि से महादेवी का समूचा काव्य अप्रतिम हो गया है। छायावादी कविता में करुणा, प्रेम, सौन्दर्य, मानवतावाद, नारी उत्थान की भावना, दीन–दुखियों के प्रति सहानुभूति की अभिव्यक्ति तथा छुआछूत, ऊँच–नीच, अमीर–गरीब का भेदभाव मिटाकर सभी को समान रूप से देखने की जो नयी दृष्टि है, वही जीवन के बदलते हुए मूल्यों की अभिव्यक्ति है। छायावादी कवियों ने परम्परावादी मूल्यों को पहली बार चुनौती देकर उन्हें अस्वीकार किया। इस सम्बन्ध में डॉ. शम्भूनाथ सिंह का कथन है कि – "सामाजिक सम्बन्धों का आधार वैषम्य होने से समाज के प्रति अनास्था का होना स्वाभाविक है। इस अनास्था और असन्तोष के कारण कवि को इस बात के लिए विवश होना पड़ता है कि या तो वह विद्रोह बनकर समाज में प्रचलित मान्यताओं और मूल्यों का विरोध करे और पुराने मानदण्डों को तोड़कर नये मानदण्डों के निर्माण में योग दे या उन मान्यताओं को न मानते हुए भी जीवन में उनसे बँधा रहे और अतृप्ति, भूख तथा निगूढ़ और निष्क्रिय कामना लेकर कल्पना–लोक का सृजन करें।" [36]

(5) करुणा एवं लोक मंगल की कामना

महादेवी के काव्यों में मानवीय करुणा का सागर असीम और अगाध है। वैयक्तिक धरातल पर लोक जीवन के मूल्यों का सहज स्पर्श है। महादेवी के साहित्य में मानवमूल्य विषयक जो शक्ति है वह लोक जीवन की इसी चेतना की पहचान की शक्ति है। गीतों, निबन्धों, रेखाचित्र और संस्मरणों के नये प्रयोग की ओर संकेत करके महादेवी जी ने मानव मूल्य की पारम्परिक संवेदना के वाहक के साथ–साथ नयी चेतना का भी वाहक बनाया। स्त्री प्रसंग के अन्तर्गत उन्होंने नारी शोषण का पर्दाफाश किया है।

सांसारिक और आध्यात्मिक स्तर पर करुणा की देवी महादेवी की विशिष्ट विचारधाराएँ विकसित हुई। उन्होंने समाज सापेक्ष स्थिति और सहित्य सृजन के सामाजिक उपयोगिता पर विशेष ध्यान दिया। अपने अन्तः प्रेरणाओं से महादेवी जी ने देवी सरस्वती की विधायिनी शक्ति के रूप में मानव के अज्ञात लोक में पदार्पण की और अपने साहित्य चिन्तन को रहस्यात्मक धरातल पर मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा की। इस संबंध में महादेवी जी ने सामाजिक और साहित्यिक सागर की अतल गहराई तक उतरकर मानवीय

वृत्तियों को सुसंस्कृत किया। उनकी वृत्तियों को परिष्कृत किया। साथ ही मानव के दायित्व भावना को सचेष्ट बनाया।

कवयित्री महादेवी के काव्य में करुणा और लोकमंगल की कामना कवि की गहरी संवेदना, अध्ययन और चिन्तन का परिणाम था। समाज के प्रति गहरी सहानुभूति और युगदर्शन का इतना महान व्याख्याता हिन्दी साहित्य में शायद ही कोई दूसरा होगा। असहाय वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति दिखाकर महादेवी ने मनुष्य को मनुष्य समझाने तथा उसे समान अधिकार दिलाने का सराहनीय प्रयास किया। उन्हीं के शब्दों में – "जो जाग चुका है वह अधिक समय तक सोते हुए का अभिनय नहीं करता रह सकता है। हमारी जागृति बहनों में से कुछ ने विद्रोह आरम्भ कर दिया है और कुछ उसके लिए सुयोग ढूँढ़ रहे हैं जो देश के भावी नागरिकों के विधाता हैं, उनके प्रथम और परम गुरु हैं जो जन्मभर अपने आपको मिटाकर दूसरों को बनाती रहती है, वे केवल तभी तक आदरहीन मातृत्व तथा अधिकार शून्य पत्नीत्व स्वीकार करती रह सकेगी, जब तक उन्हें अपनी शक्तियों का बोध नहीं होता। बोध होने पर वे बन्दिनी बनाने वाली श्रृंखलाओं को स्वयं तोड़ फेकेंगी परन्तु उस दशा में अशान्ति और संघर्ष अवश्यम्भावी है जिसके कारण बहुत समय तक समाज की सुचारू व्यवस्था होनी कठिन हो जावेगी। अतः सामाजिक अधिकारों का फिर से निरीक्षण तथा उनमें समय के प्रतिकूल परिस्थितियों को दूर करने का प्रयास ही भविष्य के लिए श्रेयष्कर हो सकेगा।

निष्कर्ष

कवियों ने अशेष प्रवृत्ति के साथ परमसत्ता का सम्बन्ध स्थापित किया तथा इस सार्वभौमिक भावना को काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की। इससे प्राचीन मान्यताओं में लिपटे हुए मन को उन्मुक्त असीम वातावरण मिला, विश्वजनीन मानवता का उत्कर्ष हुआ, स्थूल तथ्यों का भेदन हुआ, जीवन–सत्य को देखने की प्रेरणा मिली तथा अनुभूति के क्षणों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण हुआ। सामाजिक आधार की दृष्टि से भी छायावादी कवियों का रहस्यवाद मध्ययुगीन सन्तों के रहस्यवाद से लोकप्रिय प्रतीत होता है। इसमें सन्तों का द्रविड़ प्राणायाम न होकर जीवन, जगत् तथा ईश्वर को नये रूप में देखने की जिज्ञासा विद्यमान है। कुल मिलाकर छायावादी काव्यधारा की रहस्यवादी भावना चिरन्तन, मौलिक, नवीन, मनोवैज्ञानिक तथा विशिष्ट है।

प्रगतिवाद के प्रति आरम्भ में जितनी ललक कवियों की रही, उतनी उपन्यासकारों की नहीं। उपन्यासकारों के लिए संदेश बहुत नया नहीं था क्योंकि उपन्यास का जन्म सामाजिक यथार्थ को लेकर हुआ था। यही वजह है कि 'प्रगतिशील लेखक संघ' के अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए प्रेमचन्द ने कहा कि लेखक स्वभावतः प्रगतिशील होता है, इसलिये 'प्रगतिशील लेखक संघ' में प्रगतिशील शब्द अनावश्यक है।

स्पष्ट है कि छायावादी कवि प्रकृति के रहस्यपूर्ण संकेतों को देखकर जिज्ञासा से भर उठते हैं। प्रकृति के कण–कण में समायी हुई अनिर्वचनीय सत्ता को वे खोजने का प्रयास भी करते हैं। उनकी यह प्रवृत्ति वेदों तथा उपनिषदों में प्राप्त जिज्ञासा की भावना से सम्बन्ध रखती है।

संक्षिप्त रूप में यह कहा जा सकता है कि वेदनानुभूति छायावादी साहित्य का प्रधान जीवन–दर्शन है। जगत् तथा जीवन की निस्सारता से व्यथित होकर छायावादी कवियों ने दुःखवाद का सृजन किया। उन पर महात्मा बुद्ध के "सर्व दुःखस" की भावना का प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसके साथ ही छायावादी कवियों का व्यक्तिगत सुख–दुख भी उसके प्रति उत्तरदायी हैं। उनकी यह वेदनानुभूति मानव जीवन को निष्क्रिय न बनाकर उसमें आशा का संचार करने तथा विषय परिस्थितियों से संघर्ष करने की प्रेरणा देती है। वस्तुतः छायावादी कवियों की वेदना और करुणा विश्वप्रेम तथा मानवता का रूप ग्रहणकर जीवन को नयी दिशा तथा अभिव्यक्ति देने में सर्वथा सक्षम है।

निःसन्देह यह कहना सच होगा कि महादेवी का जीवन दर्शन और साहित्य सृजन विरह वेदना और प्रणय भावना की नीति पर आदृत है।

सन्दर्भ

1. अतीत के चलचित्र, पृष्ठ 15, 16, महादेवी वर्मा।
2. आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास, पृष्ठ 149, डॉ. आशा किशोर।
3. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ–डॉ. नामवर सिंह, पृष्ठ 50।
4. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध – जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ 39।
5. कवि और काव्य – शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृष्ठ 151।
6. आधुनिक साहित्य – नन्ददुलारे बाजपेयी, पृष्ठ 371।
7. काव्य की भूमिका – दिनकर, पृष्ठ 40।
8. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ – डॉ. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, पृष्ठ 541।
9. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ–डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ 13।
10. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 330, आचार्य दुर्गाशंकर मिश्र।
11. लहर, पृष्ठ 16, जयशंकर प्रसाद।
12. कामायनी, पृष्ठ 24–25, जयशंकर प्रसाद।
13. संस्कृति और साहित्य, पृष्ठ 35, डॉ. रामविलास शर्मा.।
14. दीपशिखा, पृष्ठ 53, महादेवी वर्मा।
15. छायावाद युग, पृष्ठ 65, डॉ. शम्भूनाथ सिंह।
16. छायावाद का पतन, पृष्ठ 119, डॉ. देवराज।
17. छायावादी कवियों का सांस्कृति दृष्टिकोण, पृष्ठ 387, डॉ. प्रमोद सिन्हा।
18. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 550, डॉ. नगेन्द्र।
19. महादेवीः आस्था और अन्य निबन्ध, पृष्ठ 26, महादेवी वर्मा।
20. महादेवीः नया मूल्यांकन, पृष्ठ 65, डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त।
21. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 116, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
22. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृष्ठ 217, महादेवी वर्मा।
23. जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ 76, नन्ददुलारे बाजपेयी।
24. आधुनिक हिन्दी कविता में गीति–तत्व, पृष्ठ 303, डॉ. सच्चिदानन्द तिवारी।
25. छायावाद युग, पृष्ठ 78, डॉ. शम्भूनाथ सिंह।
26. जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ–23–25, नन्ददुलारे बाजपेयी।
27. छान्दोग्य (उत्तरार्द्ध), 5/108।
28. विनयपिटक, महावग्ग 1/1/6, पृष्ठ 81।
29. सुखाद्बहुतरं दुःखं जीविते नास्ति संशयः – महाभारत, शान्तिपर्व, 205/6।
30. दुःखालयमशाश्वतम् – गीता, 8/15।
31. अनित्यमसुखम् – गीता 9/33।
32. पातंजलि योग सूत्र 215।
33. महाभारत, शान्तिपर्व, 197/9।
34. छायावाद युग, पृष्ठ 72, डॉ. शम्भूनाथ सिंह।
35. आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास, पृष्ठ 154, डॉ. आशा किशोर।
36. छायावाद युग, पृष्ठ 64, डॉ. शम्भूनाथ सिंह।